Introduction

प्राक्कथन

साहित्य की जो व्युत्पत्तिगत परिभाषा है उसके अनुसार साहित्य समाज, राष्ट्र, विश्व तथा मानव समुदाय के उत्कर्ष-उन्नयन के लिए होता है। प्रत्यक्ष व परोक्ष रुप से उसमें मानव कल्याण की भावना निहित रहती है। साहित्य से ही मानव सभ्यता और संस्कृति का निर्माण वा विकास होता है। जिस देश या राष्ट्र का साहित्य जितना ही उत्कृष्ट और मानव-मूलग्राही होगा मानव सभ्यता और संस्कृति के इतिहास में उतना ही ऊँचा होगा। सम्प्रति विगत कुछ सदियों की पराधीन और गर्हित स्थितियों के कारण आर्थिक दृष्टया भारत का स्थान विश्व के मानक फलक पर बहुत नीचे है तथापि अधिकांश देशों में हमारे देश को सम्मान की दृष्टि से देखा जाता है उसका कारण हमारी सभ्यता और संस्कृति है जिसका सिंचन प्राचीन उत्कृष्ठ साहित्य ने किया है। हमारे साहित्य में आरम्भ काल से ही सत्य अहिंसा, त्याग, बलिदान, निःस्वार्थ सेवा भाव जैसे मानव मूल्यों को अग्रिमता प्राप्त हुई है। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना हमारी संस्कृति का मूल मंत्र है। यह हमारे साहित्यिक जीवन मूल्यों का ही प्रभाव है कि हमारा देहात्मवादी आचार्य चार्वाक भी 'ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत', 'ऋणं कृत्वा सुरां पिबेत' नहीं कहता। अभिप्राय यह कि सभ्यता और संस्कृति की उत्कृष्ठता साहित्य की उत्कृष्ठता पर अवलम्बित है।

अतः साहित्य के प्रति अनुराग मुझ में शुरु से पाया जाता है। हाई स्कूल में गुजराती तथा हिन्दी के अतिरिक्त संस्कृत में भी मेरी गहरी रुचि रही है। हाईस्कूल के पश्चात् साहित्य के अनुराग के कारण ही महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय, बड़ौदा में हिन्दी तथा गुजराती के साथ स्नातक की उपाधि प्राप्त की। अनुस्नातक में मैंने समग्र हिन्दी (Entire Hindi) विषय को लिया था परन्तु साथ ही साथ संस्कृत महाविद्यालय से व्याकरणशास्त्र में विशारद की उपाधि प्राप्त की। अभिप्राय यह कि साहित्य के विषय ही मेरे अध्ययन-अभिरुचि में केन्द्रस्थ रहे हैं। न केवल हिन्दी साहित्य अपितु समग्र भारतीय साहित्य में आधुनिक काल साहित्य-स्वरूपों की दृष्टि से बहुआयामी रहा है। लगभग तमाम भाषा साहित्यों में गद्य और गद्य की नानाविध विधाओं का कल्पनातीत विकास हुआ है।

आधुनिक काल में गद्य के अन्तर्गत जिस विधा का सर्वाधिक विकास हुआ वह उपन्यास है। वस्तुतः उपन्यास अंग्रेजी के 'Novel' के प्रभाव स्वरूप भारतीय भाषाओं में उतर आया है। 'Novel' शब्द का अर्थ 'नया' होता है और योरोप में भी यह विधा अपेक्षाकृत नई है। 'रेनेसाँ' (Renaissance) के पश्चात वहाँ के सामाजिक ढाँचे में आमूलचूल परिवर्तन आता है। सामाजिक ढाँचे में कुछ अधिक जटिलता (Complexity) का समावेश होता है। इन परिवर्तित सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक परिस्थितियों के फलस्वरूप इनके समुपयुक्त चित्रण हेतु एक नए साहित्य स्वरुप की तलाश वहाँ शुरु होती है। फलतः नवीन परिस्थितियों के उचित संवाहक के रुप में NOvel का उद्भव वहाँ होता है। सर्वप्रथम इटली के लेखक बोकासियों द्वारा प्रणीत 'डेकामेरॉन' रचना में विद्वानों को उपन्यास का कुछ आभास प्रतीत होता है। फ्रांसीसी लेखक राबले की व्यंग्य विनोद प्रधान रचना 'गार्गान्तुवा एण्ड पान्ताग्रुएल' को डेकामेरॉन का अगला चरण मान सकते हैं। बोकासियो, राबले के पश्चात् स्पेनिश लेखक सर्वान्तीस आते हैं जिनको अधिकांश पाश्चात्य आलोचक उपन्यास के जन्मदाताओं में अनन्यतम मानते हैं। उनके द्वारा प्रणीत 'डॉन किहोटे' विश्व साहित्य की एक अद्‌भुत रचना है। परन्तु उपन्यास का निर्भान्त स्वरुप तो अठारहवीं शताब्दी में इंग्लैंड के लेखक डेनियल डिफो के रॉबिन्स क्रूसो डिफो को साधारणतया अंग्रेजी उपन्यास का जन्मदाता कहा जाता है, किन्तु यदि उपन्यास के आधुनिक यथार्थ रुप को दृष्टिगत किया जाय तो उसे विश्व उपन्यास का भी जन्मदाता कहा जा सकता है। वस्तुतः जिसे हम आधुनिक उपन्यास कहते हैं उसकी प्रथम सम्यक् झलक हमें डिफो (रॉबिन्सन क्रूसो), रिर्डसन (पामेला), फील्डिंग (टॉम जॉन्स) स्मोलेट और स्टर्न आदि अठारहवीं शताब्दी के अंग्रेज लेखकों में मिलती है। डिफो, फील्डिंग और स्मोलेट जहाँ बाह्य यथार्थ (सामाजिक यथार्थ) का चित्रण करते हैं वहाँ रिचर्डसन और स्टर्न जैसे लेखक वैयक्तिक भावनाओं और आन्तरिक मनः स्थितियों पर विशेष बल देते हैं। उसके पश्चात् अंग्रेजी उपन्यास क्रमशः विकास की ओर अग्रसरित होता है।

यह निर्दिष्ट किया जा चुका है कि अंग्रेजी साहित्य के प्रभाव स्वरुप भारतीय भाषाओं में उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में उपन्यासों का आगमन होता है। किन्तु तब तक योरोप में उपन्यास का काफी विकास हो चुका था और उसमें जेन ओस्टिन, सर वाल्टर स्कॉट, थेकरे, डिकिन्स, टॉमस हार्डि, विक्टर ह्यूगो, एलेकझांडर ड्यूमा,

क्लाबेयर, बाल्जाक, तुर्गनिव, टॉल्सटोय जैसे विश्व विख्यात उपन्यासकार अपनी लेखनी का करिश्मा प्रकट कर चुके थे।

योरोप में रेनेसाँ (Renaissance) के पश्चात् जो जटिल व्यवस्था सामने आई, ठीक उसी प्रकार की परिस्थितियों का निर्माण हमारे यहाँ नवजागरण आन्दोलन (जिसे बहुत से इतिहासकार 'Indian Renaissance' की संज्ञा देते हैं।) के पश्चात् उद्भवित होती है। नवजागरण के कारण अनेक सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, राष्ट्रीय मुद्दे जागरूक लेखकों के सामने आते हैं, तब उनके उचित संवाहक के रूप में हमारे यहाँ भी औपन्यासिक विधा का उद्भव हुआ। इसे एक सुखद् संयोग ही कहा जा सकता है कि हिन्दी का प्रथम उपन्यास 'भाग्यवती' (पं. श्रद्धाराम फुल्लौरी) नारी-विमर्श से संपृक्त है। 'भाग्यवती' का प्रकाशन काल सन् 1878 है। अतः कहा जा सकता है कि हिन्दी उपन्यास का उद्भव 19 वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में हुआ। कमोबेश रूप में यही समय नवजागरण काल के सुधारों का भी रहा है। अतः नवजागरण के मुद्दे हिन्दी उपन्यास में विशओषतया उभरकर आए हैं। योरोप में तथा यहाँ भी रुढ़िवादी सामाजिक मूल्यों की जकड़न के विरोध में उपन्यास साहित्य आया है, यह एक गौरतलब तथ्य है। इसीलिए तो उपन्यास साहित्य को विरोध का साहित्य (Literature of discard) कहा गया है। हिन्दी उपन्यास के प्रारम्भिक दौर से ही इस तथ्य को रेखांकित किया जा सकता है। पूर्व प्रेमचन्दकाल के औपन्यासिक लेखकों में फुल्लौरी जी के अतिरिक्त लाला श्रीनिवासदास, पं. बालकृष्ण भट्ट, अयोध्या सिंह उपाध्याय, मेहता लज्जाराम शर्मा, किशोरीलाल गोस्वामी, मन्नन द्विवेदी, बाबू गोपालराम गहमरी तथा बाबू देवकीनन्दन खत्री प्रभृति की गणना की जा सकती है। इनमें अन्तिम दो को छोड़कर शेष उपन्यासकारों के सरोकार तत्कालीन सामाजिक मुद्दों से रहे हैं।

यद्यपि उपन्यास का विकास पूर्व प्रेमचन्दकाल में 19 वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में हो चुका था, तथापि उसका पूर्णरुपेण विकास तो प्रेमचन्द तथा प्रेमचन्द स्कूल के लेखकों द्वारा ही हुआ। हिन्दी उपन्यास को गरिमा और गौरव प्रेमचन्द से ही हासिल हुआ। प्रेमचन्द के उपन्यासों में सर्वप्रथम 'मानव-चरित्र की पहचान' उपलब्ध होती है। प्रेमचन्द के पश्चात् ही अन्य भाषा के साहित्यों में हिन्दी उपन्यासों की उपस्थिति दर्ज हुई है। प्रेमचन्द तथा प्रेमचन्द स्कूल के लेखकों ने भारत में हो रहे चतुष्कोणीय शोषण के

खिलाफ अपनी लेखनी चलाई है।

प्रेमचन्दोत्तर काल में मनोवैज्ञानिक उपन्यास, समाजवादी उपन्यास, आंचलिक उपन्यास,ऐतिहासिक उपन्यास, पौराणिक उपन्यास तथा व्यंग्यात्मक उपन्यास जैसी प्रवृत्तियाँ विकसित हुई हैं। समाजवादी-मार्क्सवादी उपन्यास तथा ऐतिहासिक उपन्यासों का सूत्रपात तो प्रेमचन्द युग में ही क्रमशः प्रेमचन्द तथा वृन्दावनलाल वर्मा द्वारा हो चुका था, किन्तु इन सभी औपन्यासिक प्रवृत्तियों का विकास प्रेमचन्दोत्तर काल में हुआ है। प्रेमचन्द के बाद अद्यावधि औपन्यासिक विधा निरंतर विकसित और प्रवहमान रही है और हिन्दी के कई दिग्गज साहित्यकार औपन्यासिक लेखकों में रहे हैं।

एम.ए. द्वितीय खण्ड में विशेष पत्र के रुप में मैंने 'उपन्यास' ही लिया था और तभी से मन में एक सपना आकार ले रहा था कि यदि अवसर मिला तो पी-एच.डी. उपाधि हेतु अपना शोधकार्य उपन्यास से ही किसी विषयांग को लेकर करुँगी। उपन्यास से सम्बद्ध प्रश्नपत्र को पढ़ते हुए मेरा ध्यान आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी द्वारा प्रणीत उपन्यास 'चारुचन्दलेख' की ओर गया था और तभी से इतिहास की ओर देखने की उनकी दृष्टि-सांस्कृतिक दृष्टि-से सविशेष प्रभावित हुई थी। अतः इस दिशा में कुछ करने का मन बना चुकी थी। उपन्यास का परचा हमें हिन्दी विभाग के पूर्व अध्यक्ष प्रो. पारुकान्त देसाई साहब पढ़ाते थे, अतः एम.ए. के उपरान्त मैंने उनका सम्पर्क किया परन्तु उनके अन्तर्गत एक भी स्थान रिक्त न होने से उन्होंने मुझे पादरा कॉलेज के प्राचार्य डॉ. वामन वी. अहिरे साहब से विचार-विमर्श करने की सलाह दी। डॉ. अहिरे साहब से कुछ बैठकें करने के उपरांत हमने तय किया कि किसी ऐसे लेखक पर शोधकार्य किया जाय जिनके उपन्यासों में ऐतिहासिक-सांस्कृतिक चेतना उपलब्ध होती हो। देसाई साहब ने उपन्यास का विकास पढ़ाते हुए प्रेमचन्दोत्तर काल के ऐतिहासिक-पौराणिक लेखकों में डॉ. भगवतीशरण मिश्र का सविशेष उल्लेख किया था । अतः विषयांग (Topic) चयन के सन्दर्भ में अहिरे साहब के सम्मुख मैंने डॉ. भगवतीशरण मिश्र के नाम को प्रस्तावित किया । जब इस दिशा में कुछ अग्रसरित हुए तो ज्ञात हुआ कि हिन्दी विभाग से ही डॉ. इला मिस्त्री देसाई साहब के ही निर्देशन में कार्य कर चुकी हैं तथा लेखक के अपने क्षेत्र बिहार में भी उन पर कुछ अनुसंधानपरक कार्य हुए हैं। अब तक डॉ. मिश्र के कुछ उपन्यास भी पढ़ चुकी थी । अतः मुझे कुछ निराशा हुई परन्तु तभी डॉ. अहिरे साहब

ने मुझे एक रास्ता सुझाया कि यद्यपि कार्य थोड़ा कठिन होगा परन्तु कठोर परिश्रम और अध्यवसाय करने की तैयारी हो तो डॉ. भगवतीशरण मिश्र के उपन्यासों पर शोधकार्य किया जा सकता है। बहुत सोच-विचार और गंभीर विमर्श के उपरांत हमने शोध प्रबन्ध हेतु विषयांग (Topic) का चयन किया- 'डॉ. भगवतीशरण मिश्र के उपन्यासों की भाषा : एक अनुशीलन।'

विषय-निर्धारण के उपरान्त मेरे निर्देशक महोदय ने मुझे शोध-प्रक्रिया और शोध-प्रविधि से अवगत कराया। उन्होंने मुझे निर्देश दिया कि मैं हंसा मेहता लाइब्रेरी के शोध-प्रबंधो के विभाग में जाकर प्रत्यक्षतः कुछ शोध-प्रबन्धों को देख जाऊँ उसके पश्चात् उन्होंने मुझे शोध-प्रविधि के कतिपय नियमों और सिद्धान्तों में प्रशिक्षित किया। पाद-टिप्पणी या सन्दर्भ-संकेत क्या है, उन्हें दर्ज करने की वैज्ञानिक पद्धति क्या है, अध्याय के अन्त में जो सन्दर्भानुक्रम दिया जाता है उसे लिखने की प्रविधि क्या है, सन्दर्भानुक्रम में जिन ग्रन्थों के सन्दर्भ दिए जाते हैं उनमें किन-किन बातों की आवश्यकता है? जैसे कुछ महत्वपूर्ण तथ्यों से अवगत कराया। शोध-प्रबंन्ध के अन्त में जो सन्दर्भिका या गन्थानुक्रमणिका (Bibliography) प्रस्तुत की जाती है उसे तैयार करने की विधि क्या है, एतद् हेतु प्रारम्भ से ही कौन से तथ्य अपेक्षित हैं जैसी शोध-विषयक सूक्ष्मातिसूक्ष्म प्रविधि की जानकारी देते हुए अनुसंधान विषयक कुछ ग्रन्थों को देख जाने के लिए कहा जिनमें निम्नलिखित ग्रन्थ उल्लेखनीय कहे जा सकते हैं : 'हिन्दी अनुसंधान : स्वरूप और विकास', (डॉ. भ.ह. राजूरकर), 'सन्दर्भ कोश' (डॉ. मक्खनलाल शर्मा), 'शोध और सिद्धान्त' (डॉ. नगेन्द्र), 'नवीन शोधविज्ञान' (डॉ. तिलकसिंह), तथा 'महानिबंध नु माळखु' (पं. के. का. शास्त्री) । इसके उपरान्त उन्होंने मुझे परामर्श दिया कि मैं पुस्तकालय में जाकर कुछ प्रकाशित शोध-प्रबन्धों को देख जाऊँ ताकि शोधप्रबन्ध लिखने की प्रत्यक्ष विधि को मैं भली भाँति आत्मसात कर सकूँ। इस उपक्रम में जिन प्रकाशित शोध-प्रबन्धों को मैंने देखा उनमें से कुछेक ग्रन्थों का उल्लेख यहाँ कर रही हूँ -'हिन्दी उपन्यास साहित्य का अध्ययन' (डॉ. एस.एन. गणेशन), 'हिन्दी उपन्यास पर पाश्चात्य प्रभाव' (डॉ. भारतभूषण अग्रवाल), 'हमारी नाट्य परम्परा' (डॉ. श्रीकृष्णदास), 'हिन्दी उपन्यास में कामकाजी महिला' (डॉ. रोहिनी अग्रवाल), 'शिवसागर मिश्र के सामाजिक उपन्यास' (डॉ. चन्द्रप्रकाश शुक्ल) 'हिन्दी उपन्यास साहित्य की परम्परा में

साठोत्तरी हिन्दी उपन्यास' (डॉ. पारुकांत देसाई), 'हिन्दी उपन्यासों में व्यंग्य' (डॉ. किशोरसिंह राव) 'आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में नारी के विविध रुपों का चित्रण' (डॉ. ढेरीवाला), 'मोहन राकेश व्यक्तित्व और कृतित्व' (डॉ. सुष्मा अग्रवाल), 'हिन्दी उपन्यासों में पारिवारिक सन्दर्भ' (डॉ. उषा मंत्री), 'हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद' (डॉ. त्रिभुवन सिंह), 'हिन्दी उपन्यासों में रूढ़ि मुक्त नारी' (डॉ. राजरानी शर्मा) आदि-आदि। इन प्रकाशित शोध-प्रबंधों के अवलोकन से मुझे ज्ञात हुआ कि अपनी वैयक्तिक अभिरुचि हेतु उपन्यास पढ़ना और उस पर शोधकार्य करना यै दोनों एक-दूसरे से भिन्न है। किसी विषय पर स्वतंत्र रुप से आलोचनात्मक ढंग से पुस्तक लिखना एक बात है किन्तु किसी विषय को अग्रसरित करते हुए शोध-प्रबन्ध लिखना एक दूसरी ही बात है। असंदिग्ध एवं वैज्ञानिक तथ्यों की पड़ताल करना उनका अनुसंधानपरक विश्लेषण प्रस्तुत करना सचमुच में परिश्रम साध्य कार्य है।

इस प्रकार एक सुदीर्घ बौद्धिक व्यायाम के उपरांत उपर्निर्दिष्ट विषयों को लेकर दिनांक 7-5-2001 को महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय की पी-एच.डी. उपाधि हेतु कला संकाय के हिन्दी विभाग में डॉ. वामन वी. अहिरे के अन्तर्गत पंजीकरण विधि संपन्न हुई । तदुपरान्त मैंने अपने उपजीव्य ग्रन्थों का विधिवत् अनुसंधानपरक दृष्टि से अध्ययन किया। मैंने अपने अध्ययन के अन्तर्गत डॉ. भगवतीशरण मिश्र के अद्यावधि प्रकाशित प्रायः सभी उपन्यासों को लिया है। जिनमें निम्नलिखित मुख्य हैं-- नदी नहीं मुड़ती, सूरज के आने तक, एक और अहल्या, लक्ष्मणरेखा (सामाजिक उपन्यास), बंधक आत्माएं (चमत्कारी घटनाओं पर आधारित उपन्यास), पहला सूरज, पीताम्बरा, देख कबीरा रोया, का के लागूं पांव, गोबिन्दगाथा, शान्तिदूत (ऐतिहासिक उपन्यास), पवनपुत्र, प्रथम पुरुष, पुरुषोत्तम (पौराणिक उपन्यास)। शोध-प्रबन्ध की समुचित नियोजना तथा अध्ययन की सुविधा हेतु प्रस्तावित शोध-प्रबन्ध को निम्नलिखित सात अध्यायों में विभक्त किया गया हैः-

1. विषय-प्रवेश
2. कथावस्तु के परिप्रेक्ष्य में डॉ. भगवतीशरण मिश्र के उपन्यासों की भाषा।
3. पात्र और परिवेश के सन्दर्भ में डॉ. भगवतीशरण मिश्र के उपन्यासों की भाषा

4. शब्द-विचार
5. वाक्य-विचार
6. डॉ. भगवतीशरण मिश्र की भाषा-शैली के कतिपय अभिलक्षण
7. उपसंहार

प्रथम अध्याय विषय-प्रवेश का है। शोध-प्रबन्ध उपन्यास से सम्बद्ध होने के कारण प्रारम्भ में प्रास्ताविक के अन्तर्गत बहुत संक्षेप में उपन्यास के आविर्भाव पर प्रकाश डाला गया है। उसके पश्चात् उपन्यास में गद्य के महत्व को निर्दिष्ट करते हुए पाश्चात्य आलोचक राल्फ फाक्स तथा ईवा वाल्फर्ट की एतद् विषयक विभावना को स्पष्ट करने का यत्न किया गया है। उपन्यास में Spoken Language के महत्व को बताते हुए 'मैला आँचल' के सन्दर्भ में औपन्यासिक भाषा पर विचार-विमर्श हुआ है। यह अकारण नहीं है कि प्रायः संसार की तमाम भाषाओं में गद्य के समुचित विकास के बाद ही उपन्यास का आविर्भाव हुआ है। यह कहना उपयुक्त होगा कि उपन्यास की भाषा उसके परिवेश के अनुरूप होनी चाहिए। परिवेश को देशकाल कहा गया है। परिवेश ही भाषा का निर्माण करता है। शैलेश मटियानी, हिमांशु श्रीवास्तव, डॉ. नरेन्द्र कोहली, जगदम्बा प्रसाद दीक्षित, भगवतीशरण मिश्र प्रभृति उपन्यासकारों के क्रमशः 'हौलदार', 'कथा-सूर्य की नयी यात्रा', 'दीक्षा', 'मुर्दाघर', 'पीताम्बरा' उपन्यासों की भाषा के उदाहरणों द्वारा इस तथ्य को स्थापित किया गया है कि वही लेखक औपन्यासिक यथार्थ की सृष्टि में सफल होता है जो परिवेश के अनुरुप भाषा का प्रयोग करता है। उपन्यास के चरित्र-निर्माण में भाषा-कर्म को नकारा नहीं जा सकता। यहाँ पर भाषा के प्रायः तीन स्तर सामने आते हैं- (क) चरित्र-निर्माण में लेखक द्वारा प्रयुक्त भाषा, (ख) स्वयं पात्र द्वारा प्रयुक्त भाषा, (ग) किसी अन्य पात्र द्वारा प्रयुक्त भाषा। उक्त तीनों दृष्टियों से उपन्यासों से उदाहरणों को लेते हुए चरित्र-निर्माण में भाषा कर्म के महत्व को निर्दिष्ट करने का प्रयत्न हुआ है। यहाँ प्रथमतः एक बात स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध में डॉ. भगवतीशरण मिश्र की भाषा पर विचार किया गया है, अतः उनके उपन्यासों की भाषा के सन्दर्भ में विस्तृत और ब्यौरेवार चर्चा तो परवर्ती अध्यायों में हुई ही है, अतः यहाँ पर मिश्रजी के उपन्यासों को न लेकर अन्य लेखकों के उपन्यासों को लिया गया है। जिनमें 'साँप और सीढ़ी' (शानी) 'आधा गाँव' (राही मासूम रजा),

'रागदरबारी' (श्रीलाल शुक्ल), प्रभृति उपन्यास मुख्य हैं। बीच-बीच में इसी परिप्रेक्ष्य में कहीं-कहीं मिश्रजी के उपन्यासों से भी उदाहरण दिए गए हैं। इन मुद्दों की पड़ताल के पश्चात् उपन्यास में निरूपित जीवन-दर्शन और भाषा, उपन्यास में भाषा की बहुस्तरीयता जैसे कतिपय महत्वपूर्ण मुद्दों को विश्लेषित करने का भी उपक्रम रहा है। प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध डॉ. भगवतीशरण मिश्र के सन्दर्भ में है अतः विषय-प्रवेश के अन्तर्गत बहुत संक्षेप में डॉ. मिश्र की जीवन-यात्रा को जन्म तथा शैशव, शिक्षा-दीक्षा, प्रशासनिक सेवा, प्रारम्भिक साहित्यिक संस्कार इत्यादि शीर्षकों के अन्तर्गत व्याख्यायित करने का भी हमारा उपक्रम रहा हे। इसी क्रम में लेखक डॉ. भगवतीशरण मिश्र का संक्षिप्त परिचय देते हुए यह चिह्नित किया है कि वह एक विकसनशील एवं सक्रिय लेखक है। इसी अध्याय के अन्तर्गत डॉ. मिश्र की औपन्यासिक भाषा-विषयक अवधारणा को भी स्पष्ट करने का यत्किंचित प्रयास किया गया है। अध्याय के अन्त में समग्रावलोकन की प्रक्रिया द्वारा अध्याय के निष्कर्ष और सन्दर्भानुक्रम दिए गए हैं।

दूसरे अध्याय में 'कथावस्तु के परिप्रेक्ष्य में डॉ. भगवतीशरण मिश्र के उपन्यासों की भाषा' पर वस्तुनिष्ठ दृष्टि से विचार किया गया है। उपन्यास की कथावस्तु का भी उसकी भाषा पर असंदिग्धतया एक निश्चित प्रभाव पड़ता है। जैसी कथावस्तु होगी भाषा का स्तर भी उसी प्रकार का रहेगा। व्यक्ति की सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, व्यावसायिक स्थिति उसकी भाषा को निश्चयतः प्रभावित करती है। कथावस्तु की भिन्नता के कारण ही उपन्यास की विभिन्न कोटियाँ अस्तित्व में आई हैं। प्रस्तुत शोध-प्रबंध में हमने डॉ. भगवतीशरण मिश्र के अद्यावधि प्रकाशित प्रायः सभी उपन्यासों को लिया है। उनके उपन्यासों पर दृष्टिपात करने से ज्ञापित होता है कि उनके उपन्यासों को हम निम्नलिखित चार कोटियों में विभक्त कर सकते हैं..... (01) सामाजिक उपन्यास (02) ऐतिहासिक उपन्यास (03) पौराणिक - सांस्कृतिक उपन्यास (04) चमत्कारिक एवं आध्यात्मिक अनुभवों से युक्त उपन्यास। 'नदी नहीं मुड़ती', 'एक और अहल्या', 'सूरज के आने तक' तथा 'लक्ष्मण-रेखा' आदि उनके सामाजिक उपन्यास हैं। उनके एतिहासिक उपन्यासों में 'पहला सूरज', 'पीताम्बरा', 'देख कबीरा रोया', 'का के लागूं पांव', 'गोबिन्द गाथा' तथा 'शान्तिदूत' आदि की गणना कर सकते हैं जो क्रमशः छत्रपति शिवाजी, मीराबाई, कबीरदास गुरु, तेगबहादुर, गुरु गाविन्दसिंह तथा महात्मा गाँधी के

जीवन-कवन पर आधारित उपन्यास है। 'शान्तिदूत' को हम निकट अतीत का उपन्यास कह सकते हैं। मिश्रजी के पौराणिक-सांस्कृतिक उपन्यासों में 'प्रथम पुरुष', 'पुरुषोत्तम' तथा 'पवनपुत्र' आदि उपन्यास आते हैं, जिनमें प्रथम दो में उन्होंने कृष्ण के जीवन को तथा तीसरे में पवनपुत्र हनुमानजी की कथा को लिया है। चूँकि कथा हनुमानजी की है अतः उसमें मर्यादा पुरुष श्रीराम का जीवन भी समाविष्ट हो गया है। उनके चौथे प्रकार की कोटि में केवल एक ही उपन्यास उपलब्ध होता है 'बंधक आत्माएँ'। अतः प्रस्तुत अध्याय में इन सभी प्रकार के उपन्यासों पर, उसके स्वरुप पर बहुत संक्षेप में विचार किया गया है। तत्पश्चात् इन सभी उपन्यासों की कथावस्तु पर प्रकाश डालते हुए उनकी भाषा पर भी कथावस्तु के परिप्रेक्ष्य में दृष्टिपात किया गया है। इनमें कथावस्तु को ध्यान में रखते हुए भाषा के कतिपय पक्ष अर्थात् उसके शब्द भण्डार, विशेषणों के विशिष्ट प्रयोग, रूपकों के विशिष्ट प्रयोग, कहावत-मुहावरे तथा उनमें प्राप्त होने वाली सूक्तियों के सन्दर्भ में विचार हुआ है। परवर्ती अध्यायों में 'शब्द-विचार' तथा 'वाक्य-विचार' के अन्तर्गत भाषा के उपर्युक्त पक्षों पर विस्तार से चर्चा हुई है। अतः यहाँ पर केवल कथावस्तु को केन्द्रस्थ रखते हुए उनके कतिपय उदाहरणों को ही उल्लेखनीय समझा गया है।

तृतीय अध्याय में पात्र और परिवेश के सन्दर्भ में मिश्रजी की औपन्यासिक भाषा पर विचार-विमर्श किया गया है। यह तो एक प्रमाणित तथ्य है कि एक सामान्य नागरिक, राजा, अमात्य, आचार्य, सिपाही, अध्यापक, वकील पंडित, पुजारी, सरकारी कर्मचारी, ऑफिसर, मजदूर, किसान आदि व्यक्तियों में उनकी भाषा पात्रानुरुप होती है। व्यक्ति की भाषा भी परिवेश सापेक्ष होती है। परिवेश के अन्तर्गत 'देश' और 'काल' को लिया जाता है। 'देश' का अर्थ है - स्थान विशेष और 'काल' का अर्थ है - युग विशेष। ग्रामीण लोगों की भाषा और पढ़े-लिखे शिक्षित नगरीय लोगों की भाषा में एक निश्चित अंतर तो मिलेगा ही। फिर ग्रामीण लोगों में भी उच्चवर्गीय या उच्चवर्णीय लोगों की भाषा तथा निम्नवर्णीय लोगों की भाषा में भी थोड़ा-बहुत अन्तर पाया जाता है। फणीश्वरनाथ रेणु कृत 'मैला आँचल' में मेरीगंज गाँव की अलग-अलग टोलियों की बोली और लहजे में लेखक ने अभूतपूर्व अन्तर परिलक्षित किया है। जब हम भाषा पर विचार करते हैं तो यह तथ्य भी सामने आता कि भाषा निरंतर प्रवहमान है और समय के साथ-साथ भाषा के स्वरुप में भी परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है। सामाजिक उपन्यासों में

तो समसामयिक जन-साधारण की भाषा प्रयुक्त होती है परन्तु ऐतिहासिक-पौराणिक उपन्यासों में उपन्यास की भाषा निश्चित रुप से एक भिन्न स्तर लिए हुए रहती है। 'अँधेरे बन्द कमरे' की नीलिमा अपने पति को 'हबि' कह सकती है, किन्तु पौराणिक काल की नारी अपने पति को 'स्वामी' या 'आर्यपुत्र' नाम से सम्बोधित करेगी। डॉ. भगवतीशरण मिश्र के उपन्यासों में ऐतिहासिक उपन्यासों की भाषा में चरित नायकों तथा नायिकाओं की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के अनुरुप भाषा का प्रयोग हुआ है। 'पीताम्बरा' की पृष्ठभूमि राजस्थान-मारवाड़ की है, अतः उसकी भाषा में राजस्थानी के शब्दों, मुहावरों और कहावतों का प्रयोग मिलता है। गुरुतेगबहादुर तथा गुरु गोबिन्दसिंह से सम्बद्ध उपन्यासों में पंजाबी शब्दों की बहुतायत मिलती है। मुगलों के समकालीन होने के कारण इनमें परिवेश के अनुरुप अरबी-फारसी शब्दों की बहुलता भी लक्षित की जा सकती है। 'शान्तिदूत' अपेक्षाकृत निकट अतीत का उपन्यास है, अतः उसमें हिन्दी भाषा का आधुनिकतम रुप प्रकट हुआ है। महात्मा गाँधीजी का स्वाधीनता संग्राम ब्रिटिश सत्ता के खिलाफ था अतः उसमें अंग्रेजी शब्दों का पाया जाना स्वाभाविक ही कहा जाएगा। पौराणिक उपन्यासों में प्रायः संस्कृतनिष्ठ शब्दावली का प्रयोग रहता है। डॉ. मिश्र ने भी उसी का अनुसरण किया है। तृतीय अध्याय में इन्हीं विचार-बिन्दुओ को विश्लेषित करने का सन्निष्ठ प्रयास किया गया है।

चतुर्थ अध्याय में डॉ. भगवतीशरण मिश्र के उपरिनिर्दिष्ट सामाजिक, ऐतिहासिक, पौराणिक प्रभृति उपन्यासों में पाए जाने वाले शब्दों पर सूक्ष्म दृष्टि से विचार किया गया है। मिश्रजी के उपन्यासों में संस्कृत, अरबी, फारसी, अंग्रेजी, बंगला, पंजाबी आदि भाषाओं के शब्द के तत्सम, तद्भव तथा देशज रुपों को भी वर्गीकृत करने का यत्न हुआ है। इसके अतिरिक्त वर्णमैत्री युक्त शब्द, ध्वन्यात्मक शब्द, ध्वनि पुनरावर्तन से युक्त शब्द, युग्म शब्द, नए उपमान, नए रुपक, नए विशेषण, नवीन क्रियारूप जैसे शब्दों का विश्लेषित करते हुए डॉ. मिश्र के उपन्यासों में उपलब्ध व्यक्ति, स्थल, पेड़-पौधे, पुष्प, चीज-वस्तुओं के नाम, पशु-पक्षी और प्राणियों के नाम, आधुनिक सभ्यता से जुड़े हुए शब्द, प्राचीनता से जुड़े हुए शब्द आदि पर भी विचार किया गया है। डॉ. मिश्र के उपन्यासो में कुछ ऐसे शब्द भी उपलब्ध होते हैं जिनसे आधुनिक खड़ीबोली हिन्दी के शब्दों पर भी प्रकाश पड़ता है, यथा - 'लक्ष्मणपुर' से 'लखनऊ' तथा अंग्रेजी के

'एग्रीमेंट' से 'गिरमिटिया'। इन शब्दों को भी यहाँ रेखांकित किया गया है।

पंचम् अध्याय 'वाक्य-विचार' से सम्बद्ध है। यहाँ पर वाक्य गठन, वाक्य की परिभाषा, वाक्य के प्रकार, वर्ण मैत्री युक्त वाक्य, प्रोक्ति, मुहावरे, कहावतें तथा मिश्र जी के उपन्यासों में अंतर्निहित सूक्तियों तथा उदहरणों के सन्दर्भ में सोदाहरण विस्तृत चर्चा का उपक्रम रहा है।

षष्ठम् अध्याय में डॉ. भगवतीशरण मिश्र की औपन्यासिक भाषा-शैली की विशेषताओं को उनकी सीमाओं और मर्यादाओं के साथ उकेरने का सन्निष्ठ प्रयास किया है। यहाँ पर डॉ. मिश्र के उपन्यासों में प्रयुक्त विभिन्न सैलियों - वर्णानात्मस शैली, व्यास शैली, समास शैली, आलंकारिक शैली, तर्कयुक्त गम्भीर शैली, प्रश्न शैली, चिन्तन प्रधान शैली, तरंग शैली, धारा-प्रताह शैली, परिगणनात्मक शैली, प्रश्नोत्तर शैली, उद्धरण शैली, व्यंग्य शैली, सरल सुबोध शैली, संस्कृनिष्ठ शैली, अरबी-फारसी वाली शैली, अंग्रेजी प्रधान शैली, आँचलिक शैली-इत्यादि शैलियों के विभिन्न रुपों की सोदाहरण चर्चा की गई है।इसी अध्याय के अंतर्गत डॉ. मिश्र के औपन्यासिक गद्य में पायी जाने वाली कतिपय विशेषताओं को भी रेखांकित किया गया है, जिनमें संकेतात्मकता, संक्षिप्तता, बहुश्रुतता, सार्थक कथोपकथन, प्रतीकात्मकता, नवीन भाषाभिव्यंजना आदि को परिगणित कर सकते हैं। अध्याय के अंत में डॉ. मिश्र के गद्य की कतिपय मर्यादाओं और सीमाओं को चिह्नित करते हुए उनके गद्य में पाए ज़ाने वाले कतिपय दोषों को भी उदाहरण सहित प्रस्तुत करने का यत्न हुआ है।

प्रत्येक अध्याय के अन्त में समग्रावलोकन की प्रक्रिया द्वारा अध्याय में अंतर्निहित निष्कर्षों को रखने का सन्निष्ठ प्रयास किया है। सन्दर्भानुक्रम या संदर्भ संकेत को अध्याय के अन्त में प्रस्तुत किया गया है जिसमें पर्याप्त वैज्ञानिकता तथा पूर्णता का ध्यान रखा गया है। अन्तिम अध्याय 'उपसंहार' का है। जिसमें प्रबन्ध का समग्रावलोकन प्रस्तुत करते हुए उसकी उपलब्धियों और संभावनाओं को उकेरा गया है। प्रबन्ध के अन्त में चार परिशिष्टों के अंतर्गत उपजीव्य ग्रन्थों की सूची, अंग्रेजी-हिन्दी के सहायक ग्रथों की सूची तथा पत्र-पत्रिकाओं का निर्देश दिया गया है जिनसे शोधछात्रा लाभान्वित हुई है।

शोध-प्रबन्ध का कार्य बहुआयामी तथा परिश्रमसाध्य होता है। उसमें अनुसंधित्सु के धैर्य की पूर्णरूपेण परीक्षा होती है। अपनी शक्ति, बुद्धि-प्रतिभा तथा शोध-

अनुसंधानपरक दृष्टि-सामर्थ्य की सीमाओं और मर्यादाओं से मैं पूर्णतया अभिज्ञ हूँ। अतः इस शोध-कार्य में कोई क्षति या त्रुटि रह गई हो तो विद्वानों तथा इस क्षेत्र के अध्येताओं के प्रति मैं प्रथमतः नतमस्तक हूँ - क्षमस्व। यदि मेरे इस शोध-प्रयास से शोध-अनुसंधान तथा ज्ञान के क्षेत्र में किंचित मात्र भी अभिवृद्धि हुई है और भविष्य के अध्येता और अनुसंधित्सु स्वल्प मात्रा में भी यदि लाभान्वित और दिशान्वित होते हैं तो मैं अपने इस सारस्वत प्रयास को सार्थक समझूँगी। ईश्वरीय कृपा के बिना इस विश्व में कुछ भी संभव नहीं है अतः प्रथमतः मैं उस विश्वनियंता के प्रति कृतज्ञ हूँ। इनमें मेरी दादीजी प्रसन्नबहन तथा नानाजी प्रभुदासभाई के प्रति मैं श्रद्धावनत हूँ और इस प्रसंग पर उनके आशीर्वाद की कामना करती हूँ। मेरे माता-पिता श्रीमती इन्दुबहन तथा श्री अरविंदभाई के आशीर्वाद तथा प्रोत्साहन मुझे सदैव कर्मपथ पर अग्रसरित करते रहे तथा समस्याओं के निविड़ अँधकार में मेरे जीवन पथ को आलोकित करते रहे। माता-पिता के इन असीम उपकारों से कौन उऋृण हो सकता है? इस सन्दर्भ में गुजराती के प्रसिद्ध कवि एवं लेखक महोदय श्री सुरेश दलाल की निम्नलिखित पंक्तियाँ मेरी स्मृति में कौंध रही है-

> ''जे पूज्यभाव उरमां तम काज एने
> वाणी यदि नव शके करी व्यक्त तोये
> हैये रमे पळे पळे बस ए प्रतीति
> आ मौनना मृदुल फूल तणी सुवास।''

मेरे स्वर्गस्थ चाचाजी श्री देवदास भाई को कैसे विस्मृत कर सकती हूँ। मेरे अग्रज भाई श्री किरीट भाई तथा मेरी स्नेहमयी भाभीजी श्रीमती विमू बहन का प्रेरणा पीयूष मुझे निरन्तर मिलता रहा है अतः उनका स्मरण होना स्वाभाविक ही कहा जाएगा। मेरी अनुजा बहनों में निरंजना और मुकता के स्नेह को कैसे विस्मृत कर सकती हूँ। मेरे इस कठोर परिश्रम में मधुरता, कोमलता और वात्सल्य के स्रोत को बहाकर जिन्होंने इसे सुकर किया है ऐसे मेरे लाड़ले भतीजों-ऋृषभ तथा सिद्धि और भांजे आलोक को मैं अपना ढेर सारा प्यार देना चाहती हूँ। मेरी सुहृदा सखियाँ हर्षिला, किरण, लोपा, जिशा, सोनिया, लक्ष्मी के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करना मेरा परम कर्त्तव्य है जिन्होंने मेरा आत्मविश्वास बढ़ाने में सहयोग बनाये रखा । यहाँ पर में संस्कृत महाविद्यालय के प्राध्यापक डॉ. विजय राघवन तथा ठाकोर गुरुजी की हृदय से आभारी हूँ जिनका अमूल्य

सुझाव एवं प्रोत्साहन मुझे प्राप्त हुआ। मेरा यह सारस्वत कार्य महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय के सरोजिनी देवी हॉल के छात्रावास में सम्पन्न हुआ है, अतः छात्रावास की गृहमाता श्रीमती मायाबहन व्यास और उनका परिवार तथा हॉस्टेल-मेस के भाई श्री अल्पेशभाई और रीतेश भाई के प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करना भी मैं आवश्यक समझती हूँ। मैं हंसा मेहता लाइब्रेरी के सदस्यों के प्रति भी कृतज्ञ हूँ जिन्हों ने मेरी शोध-यात्रा दौरान अनेक किताबों को सुलभ करवाकर मुझे उपकृत किया है। यहाँ मैं उन तमाम महानुभावों, मित्रों, अभिभावकों तथा छात्रा-सहवासियों के प्रति धन्यवाद ज्ञापित करती हूँ जिनसे मैं प्रत्यक्ष या परोक्ष ढंग से प्रोत्साहित व लाभान्वित हुई हूँ।

यह कार्य मैंने महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय कलासंकाय के हिन्दी-विभाग के अन्तर्गत किया है। अतःप्रथमतः प्रवर्तमान विभागाध्यक्ष डॉ. विष्णुप्रसाद चतुर्वेदी तथा पूर्व विभागाध्यक्षा डॉ. अनुराधा दलाल के प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ जिन्होंने शोध-प्रविधि तथा प्रबन्धन के सन्दर्भ में अनेक प्रसंगों पर मेरी सहायता करके मुझे उपकृत किया है। विभाग के कई प्रवर्तमान प्राध्यापक तथा निकट अतीत में निवृत्त प्राध्यापक मेरे गुरु रहे हैं। इनमें प्रोफेसर अक्षयकुमार गोस्वामी, प्रोफेसर प्रेमलता बाफना, वरिष्ठ रीडर डॉ. भगवानदास कहार, डॉ. जे.के. व्यास, वरिष्ठ रीडर डॉ. पी.एन. झा, वरिष्ठ रीडर इन्दु शुक्ला, डॉ. ओ.पी. यादव, डॉ. शैलजा भारद्वाज, डॉ. शन्नो पाण्डेय, डॉ. दक्षा मिस्त्री, डॉ. कल्पना गवली, डॉ. के.वी. निनामा, डॉ. मायाप्रकाश पाण्डेय, डॉ. एन.एस. परमार प्रभृति के प्रति मैं अपनी हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ।

हमारी परम्परा में गुरु को सर्वोपरि स्थान दिया गया है। शिष्य के सर्वांगी विकास में गुरु के योगदान को नकारा नहीं जा सकता। हमारे सन्त शिरोमणि भक्त कवि कबीरदास तो गुरु और गोविन्द में से गुरु को ही वरीयता देते हैं। शोध-प्रक्रिया में शोध-निर्देशक (Guide) गुरु स्थान पर होते हैं। मेरा यह शोध-कार्य पादरा कॉलेज के प्राचार्य डॉ. वामन वी. अहिरे के मार्गदर्शन में संपन्न हुआ है। उनकी शिष्य वत्सलता, ज्ञाननिष्ठा, वस्तुनिष्ठता से मैं अनुग्रहीत हुई हूँ। अतः उनके प्रति पूर्णतया श्रद्धावनत हूँ। यहाँ पर मैं अपने श्रद्धेय गुरु हिन्दी विभाग के पूर्व अध्यक्ष प्रोफेसर पारुकांत देसाई के प्रति हार्दिक कृतज्ञता-ज्ञापन किए विना स्वयं को कृत-कृत्य नहीं कर सकती। अत्यन्त व्यस्त होते हुए भी उन्होंने समय-समय पर बहुमूल्य परामर्श एवं उचित दिशा-निर्देश दिए हैं।

ज्ञान की यात्रा एक निरन्तर यात्रा होती है। हमारे यहाँ कहा भी गया है - 'वादे वादे जायते तत्वबोधाः'। अतः सदाशय से किया गया किंचित मात्र यत्न भी शोध-अनुसंधान-ज्ञान के पथ में उपादेय होता है। वस्तुतः देखा जाय तो पी-एच.डी. उपाधि हेतु जो कार्य सम्पन्न होता है वह तो समालोचना तथा शोध-अनुसंधान की ओर उठाया गया प्रथम कदम होता है। यह प्रथम सोपान है, ज्ञान की कोई सीमा नहीं होती। यहाँ तो Sky is the limit को मानकर चलना होता है। मेरी अभिप्सा भी शैक्षिक जगत में ही रहने की है और मैं दृढ़तापूर्वक मानती हूँ कि एक आदर्श अध्यापक को आजीवन विद्यार्थी रहना चाहिए। अन्त में सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय' की निम्नलिखित काव्य-पंक्तियों के साथ विरमती हूँ -

''लम्बे सर्जना के क्षण कभी भी हो नहीं सकते।
बूँद स्वाति की भले हो
बेधती है मर्म सीपी का उसी निर्मम त्वरा से
वज्र जिससे फोड़ता चट्टान को
भले ही फिर व्यथा के तम में
बरस पर बरस बीते
एक मुक्ता-रुप को पकते।''

दिनांक : 09-09-2005

विनीत,

(पटेल अनसूया अरविंदभाई)